

जाता सागरदत्तस्य दासी पूतिमुखी कुधीः। इति ज्ञात्वा बुधैर्नित्यं त्याज्यं मायाकुर्म तत् ॥१२॥
मायासौ पशुयोनिदुःखजननी माया कुलध्वंसिनी माया रूपयशोमहत्त्वसुगतिश्रीशर्मनिर्नाशिनी।
ज्ञात्वेत्थं जिनधर्मकर्मनिरतैः सत्पण्डितैर्दूरतस्त्यक्त्वा तां भवसागरस्य लतिकां धर्मेन कार्या मतिः ॥१३॥

इति कथाकोशे मायाविनी पुष्पदत्ता-कथा समाप्ता।

४७. मरीचि-कथा

शर्मशस्याम्बुदं नत्वा श्रीजिनाङ्घ्रिद्वयं मुदा। वक्ष्ये मरीचिवृत्तान्तं पूर्वसूत्रानुसारतः ॥१॥
अयोध्यानगरे पूर्वं चक्रिणो भरतेशिनः। पुत्रो मरीचिनामाभूद्भव्यात्मा भद्रमानसः ॥२॥
इन्द्रनागेन्द्रचन्द्राद्यैश्चर्चितेन निरन्तरम्। श्रीमदादिजिनेनामा सोपि जातो मुनिस्ततः ॥३॥
एकदा तं जिनाधीशं श्रीमत्तीर्थकरं मुदा। समवादिसृतौ नत्वा जगाद भरतेश्वरः ॥४॥
स्वामिन्नग्रे भविष्यन्ति ये त्रयो विंशतिर्जिनाः। तेषां मध्येऽत्र कोप्यस्ति तीर्थेशां भावितीर्थकृत् ॥५॥
तेनोक्तं श्रीजिनेन्द्रेण केवलज्ञानचक्षुषा। भो वत्स ते सुतश्चायं मरीचिर्नैव संशयः ॥६॥

ठीक न किया। इसका फल इसके लिए बुरा हुआ। वह मरकर इस मायाचार के पाप से चम्पापुरी में सागरदत्त सेठ के यहाँ दासी हुई। उसका नाम जैसा पूतिमुखी था, इसके मुँह से भी सदा वैसी दुर्गन्ध निकलती रहती थी। इसलिए बुद्धिमानों को चाहिए कि वे माया को पाप की कारण जानकर उसे दूर से ही छोड़ दें। यही माया पशुपति के दुःखों का कारण है और कुल, सुन्दरता, यश, माहात्म्य, सुगति, धन-दौलत तथा सुख आदि का नाश करने वाली है और संसार के बढ़ाने वाली लता है। यह जानकर माया को छोड़े हुए जैनधर्म के अनुभवी विद्वानों को उचित है कि वे धर्म की ओर अपनी बुद्धि का लगावें ॥२-१३॥

४७. मरीचि की कथा

सुखरूपी धान को हरा-भरा करने के लिए जो मेघ समान हैं, ऐसे जिनभगवान् के चरणों को नमस्कार कर भरत-पुत्र मरीचि की कथा लिखी जाती है, जैसी कि वह और शास्त्रों में लिखी है ॥१॥

अयोध्या में रहने वाले सम्राट् भारतेश्वर भरत के मरीचि नाम का पुत्र हुआ। मरीचि भव्य था और सरल मन था। जब आदिनाथ भगवान्, जो कि इन्द्र, धरणेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि सभी महापुरुषों द्वारा सदा पूजा किए जाते थे, संसार छोड़कर योगी हुए तब उनके साथ कोई चार हजार राजा और भी साधु हो गए। इस कथा का नायक मरीचि भी इन साधुओं में था ॥२-३॥

भरतराज एक दिन भगवान् आदिनाथ तीर्थकर का उपदेश सुनने को समवसरण में गए। भगवान् को नमस्कार कर उन्होंने पूछा-भगवन् आपके बाद तेईस तीर्थकर और होंगे, ऐसा मुझे आपके उपदेश से जान पड़ा। पर इस सभा में भी कोई ऐसा महापुरुष जो तीर्थकर होने वाला हो? भगवान् बोले-हाँ है। वह यही तेरा पुत्र मरीचि, जो अन्तिम तीर्थकर महावीर के नाम से प्रख्यात होगा। इसमें कोई

अन्यतीर्थकराधीशो भविष्यति गुणोज्ज्वलः। तच्छ्रुत्वा भरताधीशः संजातो हर्षसंकुलः ॥७॥
 मरीचिस्तु तदाकर्ण्य मूढबुद्धिप्रभावतः। त्यक्त्वा व्रतं च सम्यक्त्वं मुक्त्वा भूत्वा कुलिङ्गिभाक् ॥८॥
 परिव्राजकरूपादिनाना सांख्यमतादिकम्। संप्रकाश्य स्वयं घोरे संसारे दुःखसागरे ॥९॥
 नाना जन्मांतरागाधे संभ्रान्तो भूरिभीतिदे। प्रमादो देहिनां लोके विघ्नकारीति शत्रुवत् ॥१०॥
 अज्ञानाद्भव्यजन्तुश्च भवेद्दुःखी प्रमादवान्। तस्माद्भव्यैर्न कर्तव्यो धर्मकार्ये प्रमादकः ॥११॥
 ततः कालान्तरे कष्टं भ्रमित्वा भूरि संसृतौ। मरीचिमोहमाहात्म्यात्पश्चाच्छ्रीजिनधर्मतः ॥१२॥
 नन्दाख्यो भूपतिर्भूत्वा गुरुं नत्वाभवन्मुनि। उपार्ज्य तीर्थकृन्नाम षोडशोत्कृष्टकारणैः ॥१३॥
 भुक्त्वा स्वर्गसुखं दिव्यं समागत्य महीतले। ख्याते कुण्डपुरेत्रैव श्रीसिद्धार्थमहीपते ॥१४॥
 पुत्रोऽभूत्प्रियकारिण्यास्तीर्थकृद्भुवनार्चितः। कुमारत्वे समादाय दीक्षां जातो मुनीश्वरः ॥१५॥
 घातिकर्मक्षयं कृत्वा केवलज्ञानभास्करः। सर्वदेवेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्राद्यैः प्रपूजितः ॥१६॥
 भव्यान्सम्बोध्य सन्मार्गे स्वर्गमोक्षसुखप्रदः। शेषकर्मक्षयं कृत्वा सम्प्राप्तो मोक्षमक्षयम् ॥१७॥

सन्देह नहीं। सुनकर भरत की प्रसन्नता का तो कुछ ठिकाना न रहा और इसी बात से मरीचि की मतिगति उल्टी ही हो गई। उसे अभिमान आ गया कि अब तो मैं तीर्थकर होऊँगा ही, फिर मुझे नंगे रहना, दुःख सहना, पूरा खाना-पीना नहीं यह सब कष्ट क्यों? किसी दूसरे वेष में रहकर मैं क्यों न सुख आरामपूर्वक रहूँ, बस फिर क्या था जैसे ही विचारों का हृदय में उदय हुआ, उसी समय वह सब व्रत, संयम, आचार-विचार, सम्यक्त्व आदि को छोड़-छाड़ कर तापसी बन गया और सांख्य, परिव्राजक आदि कई मतों को अपनी कल्पना से चलाकर संसार के घोर दुःखों का भोगने वाला हुआ। इसके बाद वह अनेक कुगतियों में घूमा। सच है, प्रमाद, असावधानी या कषाय जीवों के कल्याण-मार्ग में बड़ा ही विघ्न करने वाली है और अज्ञान से अभव्यजन भी प्रमादी बनकर दुःख भोगते हैं। इसलिए ज्ञानियों को धर्मकार्यों में तो कभी भूलकर भी प्रमाद करना ठीक नहीं है। मोह की लीला से मरीचि को चिरकाल तक संसार में घूमना पड़ा। इसके बाद पापकर्म की कुछ शान्ति होने से उसे जैनधर्म का फिर योग मिल गया। उसके प्रसाद से वह नन्द नाम का राजा हुआ। फिर किसी कारण से इसे संसार से वैराग्य हो गया। मुनि होकर इसने सोलहकारण भावना द्वारा तीर्थकर नाम प्रकृति का बन्ध किया। वहाँ से वह स्वर्ग गया। स्वर्गायु पूरी होने पर इसने कुण्डलपुर में सिद्धार्थ राजा की प्रियकारिणी प्रिया के यहाँ जन्म लिया। वे ही संसार-पूज्य महावीर भगवान् के नाम से प्रख्यात हुए। इन्होंने कुमारपन में ही दीक्षा लेकर तपस्या द्वारा घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया। देव, विद्याधर, चक्रवर्तियों द्वारा वे पूज्य हुए। अनेक जीवों को इन्होंने कल्याण के मार्ग पर लगाया। अपने समय में धर्म के नाम पर होने वाली बे-शुमार पशु हिंसा का उन्होंने घोर विरोध कर उसे जड़मूल से उखाड़ कर फेंक दिया। उनके समय में अहिंसा धर्म की पुनः स्थापना हुई। अन्त में वे अघातिया कर्मों का नाश कर परमधाम-मोक्ष चले गए। इसलिए हे

अहो भव्यास्ततो नित्यं भवन्तः सारशर्मणे। चित्ते संभावयन्तूच्चैर्नान्यथा जिनभाषितम् ॥१८॥
स जयतु शुभकर्ता वर्द्धमानो जिनेन्द्रः सकलभुवननाथैः पूजितो बोधसांद्रः।
सुनरखचरेन्द्रोत्कृष्टसौख्यं प्रदत्वा फलति परमलक्ष्मीं शाश्वतीं यस्य भक्तिः ॥१९॥

इति कथाकोशे मरीचि-कथा समाप्ता।

४८. गन्धमित्रस्य कथा।

नत्वानन्तगुणाधीशं श्रीजिनं त्रिजगद्धितम्। घ्राणेन्द्रियकथां गन्ध-मित्रस्य रचयाम्यहम् ॥१॥
अयोध्यापत्तने राजा सुधीर्विजयसेनवाक्। राज्ञी विजयमत्याख्या तयोः पुत्रौ बभूवतुः ॥२॥
ज्येष्ठोसौ जयसेनाख्यो द्वितीयो गन्धमित्रकः। नाना सुगन्धपुष्पादौ लम्पटो मधुलिट् यथा ॥३॥
एकदासौ महीनाथ-स्त्रिधा वैराग्ययोगतः। स्वराज्यं ज्येष्ठपुत्राय दत्वा स्नपनपूर्वकम् ॥४॥
गन्धमित्रं लघुं पुत्रं युवराज्ये विधाय च। मुनेः सागरसेनस्य पादमूले सुभक्तितः ॥५॥
दीक्षामादाय जैनेन्द्रीं मुनिर्जातो विचक्षणः। धर्मकर्मरतो नित्यं भवेत्प्राणी सुलक्षणः ॥६॥

आत्मसुख के चाहने वालों! तुम्हें सच्चे मोक्ष सुख की यदि चाह है तो तुम सदा हृदय में जिनभगवान् के पवित्र उपदेश को स्थान दो। यही तुम्हारा कल्याण करेगा। विषयों की ओर ले जाने वाले उपदेश, कल्याण-मार्ग की ओर नहीं झुका सकते ॥४-१८॥

वे वर्द्धमान-महावीर भगवान् संसार में सदा जय लाभ करें, उनका पवित्र शासन निरन्तर मिथ्यान्धकार का नाश कर चमकता रहे, जो भगवान् जीवमात्र का हित करने वाले हैं, ज्ञान के समुद्र हैं, राजाओं महाराजाओं द्वारा पूज्यनीय हैं और जिसकी भक्ति स्वर्गादि का उत्तम सुख देकर अन्त में अनन्त, अविनाशी मोक्ष-लक्ष्मी से मिला देती है ॥१९॥

४८. गन्धमित्र की कथा

अनन्त गुण-विराजमान और संसार का हित करने वाले जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर गन्धमित्र राजा की कथा लिखी जाती है, जो घ्राणेन्द्रिय के विषय में फँसकर अपनी जान गँवा बैठा है ॥१॥

अयोध्या के राजा विजय सेन और रानी विजयवती के दो पुत्र थे। इनके नाम थे जयसेन और गन्धमित्र। इनमें गन्धमित्र बड़ा लम्पटी था। भौर की तरह नाना प्रकार के फूलों के सूँघने में वह सदा मस्त रहता था ॥२-३॥

उनके पिता विजयसेन एक दिन कोई कारण देखकर संसार में विरक्त हो गए। इन्होंने अपने बड़े लड़के जयसेन को राज्य देकर और गन्धमित्र को युवराज बनाकर सागरसेन मुनिराज से योग ले लिया। सच है, जो अच्छे पुरुष होते हैं उनकी धर्म की ओर स्वभाव ही से रुचि होती है ॥४-५॥

जयसेन के छोटे भाई गन्धमित्र को युवराज पद अच्छा नहीं लगा। इसलिए कि उसकी